उपसंहार

किसी भी कृति या वस्तु का समग्र मूल्यांकन करना आलोचना कहलाता है। गद्य - पद्य का जायजा लेकर उसे साहित्यिक परम्परा में स्थान दिलाने वाली आलोचना साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। यह साहित्य की व्याख्या के लिए सिद्धांत निर्माण करती है तथा उन सिद्धांतों के आधार पर कृति की जांच - पड़ताल में शामिल होकर उसके गुण - दोषों का विवेचन करती है। आलोचक रचना के आस्वादन के बाद उसके मूल्यांकन में प्रवृत्त होता है। कृति में व्याप्त युग परिवेश, उसके मूल्यों तथा अंतर्विरोधों की पहचान आलोचक करता है। कलात्मकता के आधार पर कृति का मूल्यांकन करके उसे पाठकों के लिए रोचकता तथा तार्किकता के साथ प्रस्तुत करता है। रचना तथा आलोचना एक - दूसरे के साथ सहयोग तथा टकराव से ही आगे बढ़ती है। रचना से सिद्धांत निर्माण का आधार ग्रहण करके आलोचना रचना के लिए नए आयाम खोलती है, उसे परम्परा में स्थापित करती है। आलोचना की इस प्रक्रिया के पीछे विचारधारा या दृष्टिकोण काम करता है। साहित्य में सामाजिकता, जीवन मूल्यों तथा उसकी सार्थकता का मूल्यांकन आलोचक किसी विचारधारा के तहत करता है। आलोचक का एक स्वतंत्र दृष्टिकोण होता है जो साहित्य की उपयोगिता को निर्धारित करता है, यह दृष्टिकोण ही साहित्य के मूल्यांकन का औजार होता है। हिंदी में साहित्य के मूल्यांकन के लिए मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, अस्तित्ववादी, भाषा वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, उत्तर - आधुनिकतावादी आदि दृष्टियां/सिद्धांत प्रचलित हैं।

हिंदी आलोचना का प्रारम्भ आधुनिक काल में हुआ। इससे पहले लक्षण - ग्रंथों की टिकाओं के रूप में काव्यालोचना होती थी। आधुनिक काल में शिक्षा के प्रसार तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध चले आंदोलनों के साथ ही नवजागरण के आगाज ने साहित्य तथा आलोचना को प्रभावित किया। इस आंदोलन से जीवन तथा समाज में जो बदलाव आए उन्हें रचना तथा आलोचना ने आत्मसात किया। गद्य के प्रादुर्भाव, प्रेस की स्थापना तथा पाश्चात्य समीक्षा - सिद्धांतों के प्रभाव में आलोचना के प्रतिमानों की स्थापना होने लगी, जिसका संपूर्ण विकास शुक्ल युग में हुआ। शुक्ल जी ने आलोचना को उसके शीर्ष पर पहुंचाया तथा हिंदी साहित्य में इसे एक

स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित किया। जो आज सृजनात्मक साहित्य की एक विधा मानी जाने लगी है। हिंदी आलोचना के विकास की लम्बी परम्परा में भारतेंदु हरिश्चंद्र, चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विविवेदी, पदमसिंह शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, अमृतराय, शिवदान सिंह चौहान, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, रांगेय राघव, विजयदेव नारायण साही, नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र, निर्मला जैन, विश्वनाथ त्रिपाठी, ओमप्रकाश ग्रेवाल, वीरभारत तलवार, कर्णसिंह चौहान, शंभुनाथ, पुरुषोत्तम अग्रवाल, रोहिणी अग्रवाल आदि प्रमुख हैं।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अनेक राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुए। राज्य की नई नीतियों ने आमजन को प्रभावित किया, भूमण्डलीकरण के वेश में मुक्त पूंजी का आगमन हुआ। आर्थिक नीतियों के साथ ही सामाजिक तथा सांस्कृतिक बदलावों ने आकार ग्रहण किया। पूंजीवाद तथा उपभोक्तावाद ने जहां लोगों को गुमराह किया वहीं सूचनाक्रांति ने उनके लिए एक रहस्यमयी खिड़की को हमेशा के लिए खोल दिया। दलित, दमित जन ने मुक्ति के लिए संघर्ष तेज किया। इस संघर्ष में स्त्री, दलित, आदिवासी अपने भिन्न - भिन्न मुद्दों को लेकर शामिल हुए। समाज में हर स्तर पर मुक्ति के लिए आंदोलन उभरने लगे। साहित्य में ये आंदोलन एक विमर्श के रूप में नजर आए। स्त्री, दलित तथा आदिवासी जीवन पर केन्द्रित रचनाएं आने लगी। आलोचना ने इस लेखन को सभी कोणों से देखा - समझा और व्यक्त किया।

स्त्री लेखन तथा आलोचना में अनामिका, कात्यायनी, मृणाल पाण्डेय, क्षमा शर्मा, सरला माहेश्वरी, प्रभा खेतान, सुधा सिंह, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, सुमन राजे, निर्मला जैन, रोहिणी अग्रवाल आदि ने अपने लेखन में स्त्री के अस्तित्व, देह की आजादी, प्रेम, वर्चस्व तथा समान अधिकारों के मुद्दे उठाए । आदिकालीन तथा मध्यकालीन साहित्य की स्त्री विमर्श के नजरिए से पुनर्व्याख्याएं होने लगी। मीरा, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी के साहित्य में रहस्य तथा पीड़ा की

जगह विद्रोह तथा चेतना को खोजा जाने लगा। घरेलू तथा दोयम दर्जे का कहा जाने वाला स्त्री लेखन मुख्यधारा का साहित्य बनकर उभरा।

दलित चिंतकों जोतिबा फुले, आम्बेडकर आदि से प्रेरणा ग्रहण कर दलित आंदोलन तथा लेखन की रफ्तार तेज हुई। दलित आत्मकथा ने दलित जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज पेश किया जिससे आलोचकों की दलित साहित्य के प्रति गम्भीरता बढ़ी। दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र, स्वानुभूति नाम सहानुभूति, सामाजिक न्याय तथा बराबरी, संपत्ति के साधनों मे भागीदारी की मांग आदि मुद्दे दलित साहित्य की पहचान बने जिसे बाद में आलोचना ने व्याख्यायित किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि, डा. धर्मवीर, कंवल भारती, डा. एन. सिंह, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौरे, दयानंद बटोही, डा. तेजसिंह, विमल थोराट, गेल ओमवेट , बजरंग बिहारी तिवारी आदि ने दलित विमर्श तथा आलोचना को नया आयाम दिया।

विकास के नाम पर आदिवासी क्षेत्रों में हो रहे अंधाधुंध दोहन तथा अधिग्रहण ने आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल किया। उनकी संस्कृति ,सामूहिक जीवनशैली, परम्परा आदि पर हमले ने उन्हें संघर्ष के लिए मजबूर किया। यूरेनियम, कोयला, बाक्साइट, माइका, लोहा, तांबा, मैंगनीज आदि के दोहन के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा आदिवासियों की जीवनशक्ति जल, जंगल और जमीन पर कब्जा करके उन्हें नष्ट किया। अपने संसाधनों को बचाने के लिए संघर्षरत्त आदिवासियों ने साहित्यकारों को प्रभावित किया। हिंदी लेखन तथा आलोचना में आदिवासी विमर्श के मुद्दे तथा उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता व्यक्त होने लगी। रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, रमेशचंद्र मीणा, रमेश सम्भाजी कुरे, ब्रह्मदेव शर्मा, दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे आदि आदिवासी विमर्शकार तथा आलोचक हैं।

एक समय के बाद हरित क्रांति के दुष्प्रभावों, विश्व व्यापार संगठन की किसान विरोधी नीतियों, बढ़ती महंगाई, घटते उत्पादन, न्यूनतम समर्थन मूल्य न मिलने तथा बाढ़, सूखे की मार ने किसानों को तबाह किया। कर्ज के बोझ तले दबे किसान आए दिन आत्महत्या करने लगे। किसानों के संकट तथा बढ़ती आत्महत्याओं ने साहित्यकारों को प्रभावित किया तथा किसान की समस्या

और संघर्ष को साहित्य में जगह मिली। हालांकि किसान मध्यवर्गीय शहरी साहित्य का केंद्रीय विषय नहीं बन पाया फिर भी कुछ रचनाकारों संजीव, रामाज्ञा शशिधर आदि ने किसान केंद्रीत रचना तथा आलोचना की। हिंदी आलोचकों अशोक कुमार पाण्डेय, मैनेजर पाण्डेय, रामाज्ञा शशिधर आदि ने भूमि अधिग्रहण, विस्थापन तथा किसानों की आत्महत्या के मुद्दों को आलोचना में उठाया।

बाजार मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भूमण्डलीकरण के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते बाजार का प्रसार हुआ तथा बाजार का मनुष्य पर नियंत्रण बढ़ा, श्रम तथा संसाधनों की लूट बढ़ी। पूंजी के इस दौर में बाजार ने अपनी भूमिका बदली और बाजार एक घटक मात्र न रहकर विचारधारा बन गया जिसका नाम बाजारवाद पड़ा। बाजार ने मनुष्य में प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा की फलस्वरूप वह त्याग की जगह संग्रह को महत्व देने लगा। बाजार ने विविधता को खत्म करके जीवनशैली में एकरुपता पैदा की। बाजार के प्रभाव में व्यक्ति स्वकेन्द्रित तथा औपचारिक होने लगा। उसके ज्ञान की जगह सूचना ने ले ली और सार्थकता की बजाय वह सफलता के पीछे भागने लगा। बाजार के प्रभाव ने साहित्य तथा आलोचना को काफी हद तक प्रभावित किया। एक तरफ जहां बाजार के प्रभाव में तथा बाजार के लिए लेखन होने लगा वहीं दूसरी तरफ बाजारवाद के खिलाफ भी आवाज उठने लगी। बाजार के मुख्य घटकों भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद, सूचना प्रोद्यौगिकी तथा विज्ञापन संस्कृति पर कमल नयन काबरा, अरुण त्रिपाठी, रमेश उपाध्याय, आनंद प्रकाश, मैनेजर पाण्डेय, विजय कुमार, मृत्युंजय सिंह, अरुण होता आदि आलोचकों ने गम्भीरता से लिखा है।

मनुष्य के जीवन का आधार भूमि, जल, जंगल आदि आज विकास के नाम पर नष्ट किए गए। मनुष्य की बढ़ती जरुरतों ने पर्यावरण के साधनों के दोहन को जन्म दिया। रोज बनते नए - नए उद्योग, उपज बढ़ाने के नाम पर कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग, बढ़ते शहरीकरण ने फसलों तथा फूलों की खुशबू की जगह धुएं तथा तेल की बदबू हमारे नथूनों में भर दी। पर्यावरण ह्रास के कारण बिगड़ते संतुलन के परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, बेमौसमी बरसात, हिमस्खलन, भूकम्प,

सूनामी आदि ने मनुष्य के जीवन को तबाह किया। पर्यावरण ह्रास के कारण मनुष्य के जीवन पर आए संकट की चिंता साहित्य तथा आलोचना में अभिव्यक्त हुई है। लहलहाती फसलों, बहती नदियों, झूमते पेड़ों की जगह आज साहित्य में बर्बाद होती फसलों, कटते पेड़ों, सूखती नदियों तथा लुप्त होते पक्षियों की चिंता है। साहित्य की तुलना में आलोचना में यह चिंता बहुत कम है। पारिस्थितिक संकट पर केन्द्रित साहित्य की छिटपुट लेखों में आलोचना के. वनजा, भारत डोगरे, रमेश उपाध्याय, मैनेजर पाण्डेय, रोहिणी अग्रवाल आदि ने की है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम तथा उसके बाद साम्प्रदायिकता मुख्य समस्या रही है। भारत विभाजन के बाद बाबरी विध्वंश तथा गुजरात में दंगों के माध्यम से साम्प्रदायिक शक्तियों ने भय तथा आतंक के माहौल का निर्माण किया। साम्प्रदायिकतावादी विचारधारा ने इतिहास की विकृत व्याख्या पेश कर राष्ट्र, धर्म, संस्कृति, भाषा, क्षेत्र आदि का सहारा लेकर मनुष्यता को खत्म करने का काम किया है। प्रभु - वर्ग तथा राजनीतिज्ञों की पक्षधर जनमानस की विरोधी इस विचारधारा का विरोध साहित्यकारों तथा आलोचकों ने शुरु से किया है। विपिन्न चंद्रा, असगर अली इंजीनियर, नामवर सिंह, बद्री नारायण, रमेश उपाध्याय आदि साम्प्रदायिकता विरोधी विमर्शकार तथा आलोचक हैं।

उत्तरशती की आलोचना विभिन्न पड़ावों से होते हुए अपने रूप को बदलती गई। आलोचना ने कुछ नए मूल्यों, सिद्धांतों को ग्रहण किया तो पुराने मूल्यों से मुक्त हुई। उत्तर - आधुनिकता की पश्चिमी आंधी से आलोचना बच नहीं पाई और सूचना प्रौद्योगिकी तथा सोशल मीडिया के प्रभाव में तुरंत प्रसारित सूचनाओं को निगलने में असमर्थ रही। देश - दुनिया में हुई घटनाओं पर साहित्य के साथ ही आलोचना भी तत्काल अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करने लगी। जैट युग ने आलोचक के धैर्य तथा समय को उससे छीन लिया, जिससे लम्बे समय तक शांतचित्त होकर साहित्य - सिद्धांतों का निर्माण करना उसके वश से बाहर की बात हुई। आलोचना की अखबारी संस्कृति के प्रभाव में आलोचक इतिहास तथा आलोचना प्रतिमानों से निरपेक्ष होकर अपनी राय पुस्तक समीक्षा के रूप में देने लगा, जिसका एक कारण विचारधारा का विलोपीकरण

भी है। आज के प्रतिद्वंद्वी समय में विचार की जगह सूचना ने ली है और आलोचक बहुत सारी विचारधाराओं के घालमेल को स्वीकार कर रहा है। आलोचक साहित्य तथा सत्ता दोनों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपना रहा है। कृति के बारे में सच कहने का साहस वह खोता जा रहा है जिस कारण आलोचना कृति का विज्ञापन मात्र बनती जा रही है। अब साहित्य तथा आलोचना के भीतर प्रतिरोध का स्वरूप बदल रहा है। सत्ता से सीधा टकराने का साहस साहित्य तथा आलोचना खो चुके हैं। साहित्य के संस्कृतिमूलक चिंतन को भूमण्डलीकरण ने बहुसांस्कृतिकता में बदल दिया है, जिससे संस्कृति संबंधी कोई केंद्रीय कल्पना आलोचना में देखने को नहीं मिलती। अस्मितावादी विमर्श तथा भाषायी चिंतन ने आलोचना में अपनी जगह बनाई है। बहुभाषा का मिश्रण तथा भाषा के नए सवाल स्त्री भाषा, दलित भाषा के रूप में उठने लगे हैं। इसी बीच मार्क्सवाद को अप्रासंगिक घोषित किया जा रहा है जिसकी परिणति नवमार्क्सवाद में हो रही है।